REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 9 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2020

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता में 'स्वानुभूति' की अभिव्यक्ति

डॉ. अरविंद कुमार
संप्रति : असिस्टेंट प्रोफेसर , प्रेम किशन खन्ना राजकीय महाविद्यालय
जलालाबाद,शाहजहाँपुर (उ.प्र)

कवि के कहने का अपना निहतार्थ है। उनकी 'माँ' उनकी करने वाली करने वाली 'माँ' है जो दो जून की रोटी के लिए दिन–रात परिश्रम करती है। वह नहीं जानती है मनुष्य–मनुष्य में भेदभाव करना, जो अहंकार से ग्रसित नहीं है जिसे अहम् छू तक भी नहीं पाया है जो निरंतर प्रेरणास्रोत है उनके जीवन का, जो खेत–खलियान, घर बाहर दोनों स्थान पर परिश्रम करती है। वह ऐसी 'माँ' के गर्भ से जन्म लेना स्वयं का सौभाग्य मानते हैं। निष्कर्षतः उनकी कविता का 'तेवर' कविता लेखन जैसे–जैसे उत्तरोत्तर विकास करता है। वैसे–वैसे उसमें कसावट आती जाती है। वह सामाजिक ताने–बाने को बनाये रखना चाहते हैं। वह नहीं चाहते हैं जो उनके साथ हुआ था वह किसी दलित समाज के साथ पुनः दोहराया न जाये। वह समता के पक्षधर हैं। किसी कवि के काव्य–संसार का पाठ, पुनर्पाठ, मूल्यांकन, पुनःमूल्यांकन, आलोचना, समीक्षा, पाठकीय समीक्षा करना, उसकी कविताओं की संरचना–उत्तर संरचना पर बात करना, किसी निश्पक्ष आलोचक या समीक्षक के लिए जोखिम भरा कार्य है। किसी कवित का सही–सही मूल्यांकन करने के लिए उसके रचना–संसार का गहन–अध्ययन एवं अनुशीलन करना पड़ता है। मेरे अध्ययन अनुशीलन का कवि है–ओम प्रकाश वाल्मीकि। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित कविता का सर्वाधिक चर्चित चेहरा रहे हैं। उन्होंने दलित–कविता की नयी भूमिका बनाने में अग्रणी भूमिका निभायी। दलित कविता या दलित साहित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया है कि दलित साहित्य अनुभव और भोगे हुए जीवन का साहित्य है। इसी संदर्भ में 'स्वानुभूति' एवं 'सहानुभूति' का प्रश्न भी किया जात है। क्या दलित कविता 'स्वानुभूतिपरक' है? इस अध्ययन में ओमप्रकाश वाल्मीकि के काव्य–संसार के अध्ययन एवं अनुशीलन दिया जा रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने कई पुस्तकों की भूमिकाओं में साक्षात्कारों में दिए गए अन्तरों में इस बात को स्वयं स्पष्ट किया है। 'बनासजन' पत्रिका (त्रैमासिक) के अप्रैल 2014 में 'अंतिम संवाद' नाम से 'भंवरलाल मीणा' को जब वह दिल्ली के सर गंगाराम हास्पिटल में एडमिट थे कैंसर जैसी लाइलाज बीमारी से संघर्ष कर रहे थे, उस समय दिया था। भंवर लाल मीणा से हुई बातचीत में वह कहते हैं– ''जिस व्यक्ति के अनुभव ही नहीं हैं हमारे जैसे, फिर वह कैसे इस पर कोई बात करेगा? सवाल यह है कि एक व्यक्ति के अनुभव नहीं हैं, वह सिर्फ दू से देख रहा है तो वह दूर से देखा हुआ ही लिखेगा और बहुत से लोगों ने लिखा है। आप मुझे बतायें कोई गैर दलित लेखक जूठन लिख सकता था। यह संभव ही नहीं था इसलिए यह बात किसी हद तक सही होती है कि वह सहानुभूति पूर्वक, संवेदना के उस स्तर तक आने की कोशिश करेगा। एक और खास बात देखने को मिलती है, जब हम अपने अग्रज लेखकों को देखते हैं, उन्होंने दलितों के बारे में लिखा है, दलित पात्र खड़े किये हैं लेकिन जब निर्णायक मोड़ आताहै, तब वे दलित के साथ नहीं रहे, यह अक्सर देखने में आया है। उन्होंने सब कुछ अच्छा लिखा है। लेकिन वे कहीं न कहीं चूक जाते

हैं, चाहे वह 'गोदान' हो, 'नाच्यौ बहुत गोपाल' हो या 'परिशिष्ट' हो और भी बहुत हैं। उपन्यास, कहानियाँ जिनमें उन्होंने सारे पात्रों को बड़ी शिद्दत के साथ खड़ा किया है और समझने का प्रयास किया है पर जब निर्णायक मोड़ आता है तो उनके निर्धन सामंतवादी और ब्राह्मणवादी होते हैं।'' (बनासजनःसंपादक पल्लव, अप्रैल 2014, अंक–8, वर्ष–3, पृष्ठ–4) यह तो उन्होंने दलित लेखन एवं गैर दलित लेखन के संबंध में अपनी स्पष्ट सीमा रेखा खींच दी। 'स्वानुभूति' पर भी उनका मानना है– ''ये स्वानुभूति से सहानुभूति मसला नहीं है, ये मसला है आपके जीवन के अनुभवों का। अनुभवजन्य लेखन दो तरह के होते हैं– एक तो जानकार और दूसरा सहजानकार होता है, दोनों में अंतर होता है। आप बताएँ जानकार सही लिखेगा या सहजानकार? जाहिर सी बात है जानकार ही लिखेगा। सह जानकार तो सुनकर ही लिखेगा। इन दोनों शब्दों को जिन लोगों ने बना रखा है उन्हें लड़ने दीजिए। आप इसे दूसरी तरह से समझ सकते हैं कि अनुभवजन्य लेखन और गैर अनुभवजन्य लेखन। जैसे एक डॉक्टर है और दूसरा मरीज, तो डॉक्टर उतना ही जानता है जो उसे बता रहे हैं। फिर वह कल्पनाओं से जोड़ता है, ऐसे ही बता सकता है। डॉक्टर उस तकलीफ को कभी महसूस नहीं कर पाता है जो एक बीमार करता है।'' (वही, पृष्ठ–10)

ओम प्रकाश वाल्मीकि ने अपने 'कविता–संसार' में अनुभतिजन्य पीड़ा का यथार्थ वर्णन किया है। दलितों के जीवन के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी हुए अत्याचार, अनाचार, अन्याय, शोषण इत्यादि को अपनी कविताओं में सच्चाई के साथ बयान करते हैं। उनका प्रथम कविता संग्रह 'सदियों का संताप' (1989) में प्रकाशित है। इस संग्रह में कुल उन्नीस (19) कविताएँ संकलित है। इन उन्नीसों कविताओं में उन्होंने अपनी आंतरिक पीड़ा, दर्द, टीस, घुटन, यातना, प्रतिरोध, प्रतिशोध, तिरस्कार, नकार, वर्ण व्यवस्था का खण्डन; 'जातीय व्यवस्था का खण्डन', 'उच्च निम्न का खण्डन' इत्यादि को देखा जा सकता है। 'मानचित्र' कविता में वह अपने साथ हुए गाँव में अत्याचार का खुलकर वर्णन करते हैं, वह लिखते हैं–

मेरे जिस्म के मानचित्र पर
उभर रहे हैं
बनकर फफोले
कहीं बेलछी
तो कहीं शेरपुर
कहीं पारस बिगहा
तो कहीं नारायणपुर।
(सदियों का संताप, पृष्ठ–14)

अतीत में जब वह झाँकते हैं तो उनके साथ हुए अत्याचार, अनाचार का चित्र उनके आँखों में कौंध जाता है। जहाँ उन्हें शारीरिक पीड़ा दी गयी। इसी कविता के अंत में वह लिखते हैं–

शेरपुर धधकता है
बेलछी कराहता है
और रातों–रात मुझे
दर्दनाक हादसों के समन्दर में
धकेल देता है।
(वही, पृष्ठ–16)

जब वह अतीत की गहराइयों में झाँकते हैं तो 'श्याह' अतीत पूर्वजों पर दिखाई देता है। अतीत की काली परछाइयाँ पीछा छोड़ते हुए नहीं दिखाई देती हैं। 'ज्वालामुखी' कविता में वह अपने पूर्वजों को 'घावों' को संदर्भित कर लिखते हैं–

सदियों से पीड़ित
दलित
मेरा हृदय बन गया है–
ज्वालामुखी
फट पड़ने को लालायित
भीतर ही भीतर
मुझे हिला रहा है।
(वही, पृष्ठ–5)

'युग चेतना' नामक कविता मे समूल समय जो व्यतीत हो चुका है, वह कटघरे में खड़ा करते हैं। स्वयं के साथ एवं पूर्वजों के दुख का अनुभव करते हुए कहते हैं–

मैंने दुःख झेले
सहे कष्ट पीढ़ी दर पीढ़ी इतने
फिर भी देख नहीं पाएँ तुम
मेरे उत्पीड़न को
इसीलिए युग समूचा
लगता है पाखण्डी मुझको।
(वही, पृष्ठ–24)

पूर्व हिंदी साहित्य लेखन में खासकर अस्सी के दशक के पूर्व हिंदी कविता में दलितों के दुःख–दर्द, पीड़ा, वेदना, अत्याचार, छुआछूत, अस्पृश्य–स्पृश्य, अन्याय एवं शोषण इत्यादि को केन्द्रित करके काव्य सृजन नहीं किया गया। हाँ, प्रगतिवाद लेखन में निराला, पंत, नागार्जुन, त्रिलोचन जैसे संवेदनशील रचनाकारों ने कलम चलाने की कोशिश की, किन्तु वह भी पीछे हट गये। यही कारण है कि ओमप्रकाश वाल्मीकि उस पूर्व युग को पाखण्डी की संज्ञा देते हैं। अन्य कविताओं में 'बाहर आयेंगे एक दिन', 'पण्डित का चेहरा', 'कभी सोचा है', 'सोचने नहीं देते', 'पोस्टर', 'वर्तमान', 'अतीत का ही प्रतिफल होता है!', 'मेरे पुरखे' में देखा जा सकता है। 'यातना' कविता में वह अतीत की काली, भयावह शारीरिक पीड़ा जो दलितों को दी जाती थी। इस कविता में देखी जा सकती है, कवि का कथन है–

शारीरिक यातनाओं सेबड़ी यंत्रणा होता–
इच्छाओं के विरूद्ध जीना
या देखते–देखते छिन जाना
उन क्षणों का जिनसे हँसा जा सकता था
गुनगुनाया जा सकता था
हवाओं की तरह।
(बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ–34)

उनकी कविताओं के अर्थ सरलता से नहीं लगाये जा सकते हैं। उनको समझने के लिए इतिहास के पन्नों में भी गोता लगाना पड़ता है। कभी–कभी उनकी कविताओं को समझने के लिए ग्रंथो, स्मृति ग्रंथों, में लिखी उन सभी बातों को खण्डन– मण्डन करते हैं जो मानवता के विरूद्ध है। सभी संत कवि अमानवीय पक्ष के विरूद्ध हैं। कबीर को आखिरकार कहना ही पड़ा है– 'तुम ग्रंथों में लिखी बातों को मानते हो, उन्हीं के आधार पर मनुष्य के साथ व्यवहार करते हो किन्तु मैं जो अपनी खुली आँखों से देखे हुए मनुष्य के दुर्गुणों को बताता हूँ, उसी को कहता हूँ। मेरी समझ में तुम्हारे ग्रंथों में जो बातें लिखी है वह सार हीन हैं, झूठी हैं मनुष्य और मनुष्यता के विरूद्ध है। मैं मनुष्य–मनुष्य के बीच में जो खाई बनी है, उस खाई को पाटने का प्रयास कर रहा

हूँ। मैं, प्रेम, भाईचारा, सदभाव, समता, समानता, अहिंसा की बात करता हूँ। आपस में प्रेम के साथ उठने–बैठने, सदव्यवहार करने–कराने की बात करता हूँ। न कोई छोटा है न कोई बड़ा है सभी समान हैं सभी को ईश्वर ने जन्म दिया है फिर आप लोग क्यों उलझा रहे हैं और उलझाने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। कबीर कहते हैं–

तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन देखी।।
मैं कहता सुलझावन हारी, तू राख्यौ अरुझायी।।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'पण्डित का चेहरा' में वर्णित पद्याशों का अर्थ अपनी सुविधानुसार लोगों ने गढ़ लिए–उनके अर्थ बदल दिए। उनकी व्याख्याएँ बदल दी। कवि अभिमत है–

शब्द कभी झूठ नहीं बोलते
झूठ बोलते हैं उनके अर्थ।
(वही, पृष्ठ–32)

इन्हीं शब्दों के सहारे आज भी दलितों के दोयम दर्जे का व्यवहार किया जाता है उन्हें मनुष्य न मान दलित, अछूत, अस्पृश्य या नीच (निम्न) समझा गया है। अनाचार, अत्याचार मात्र पुरुषों के साथ ही नहीं किया गया है, अपितु स्त्रियों को शारीरिक शोषण द्विज समाज के लोग शक्तिबल, बाहुबल, धनबल दिखाने के लिए करते हैं, ताकि दलित कभी अपनी आवाज ने उठाये। अभी आठ दिन पहले अलवर, राजस्थान में पति के सामने ही दरिन्दों ने उसकी स्त्री का यौनशोषण किया। उसको सोशल मीडिया पर वीडियो भी वायरल कर दिया। यह अपराध की मानसिकता का प्रतीक नहीं है। यह उच्च मानसिकता से ग्रसित उस समाज का वर्णन करता है जो आज भी दलित बहिन, बेटियों की स्त्रियों की मर्यादा को मर्यादा नहीं मानता है। वह उन्हें शोषण की वस्तु ही समझता है और अधिसंख्य आज भी इसी के पक्षधर हैं। इसी पर कंद्रित उनकी कविता है– 'घृणा और प्रेम कहाँ से शुरू होते हैं?'। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

याद करो
उस बेटे का चेहरा
जिसके सामने फेंक दिए हों
नोच–नोचकर
उसकी माँ के वस्त्र।
(वही, पृष्ठ–42)

आए दिन संपूण्र भारत में दलित स्त्रियों लड़कियों के साथ ऐसाी घटनाएँ होती रहती हैं। जिनका मीडिया क्या कहीं भी उल्लेख नहीं किया जाता है। जैसे, उनका जन्म ही शोषण की चक्की में पिसने के लिए हुआ। 'सोचने नहीं देते' कविता में 'पूर्वजों' को कोड़े मार, शरीर पर पड़े नीले चिन्ह अतीत की उस भयावह प्रतिछाया को प्रस्तुत करते हैं। जब कभी दलित पुरुषों की छाया या कार्य समय पर पूरा न कर पाने के बदले में शारीरिक यातना दी जाती थी। कवि इस कविता में संदर्भित करके लिखता है–

जब गुनगुनाते हो कोई पंक्ति
किसी प्राचीन ग्रंथ से
मुझे याद आते हैं
अपने पुरखों के रक्त सने जिस्म
भयातुर चेहरे
बोझ से झुकी देह पर नीले निशान
(वही, पृष्ठ–55)

विश्व में गुलाम प्रथा, दास प्रथा रही है इतिहास इसका साक्षी है। गुलामों एवं दासों के साथ उनके मालिक कैसा व्यवहार करते थे? यह जग जाहिर है। कवि ने तो दलित बस्तियों हुए अत्याचार को आँखों से देखा है। जब मैं प्रतापगढ़ में था तो अस्थान गाँवों में भी दलित बस्ती को जला दिया गया। अपराध का साम्राज्य कल भी सीापित किया था। आज भी स्थापित करने की कोशिश की जाती है। लेकिन कानून का उन्हें जरा भी भय नहीं है कानून को ताक पर रखकर वह इस कार्य को करते हैं। 'लाशों के बाद भी' शीर्षक कविता में जल रही दलित बस्ती का दृश्य उभारकर समक्ष रख देते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि सहृदयता देखिए–

जलती बस्तियों में
लाशों के ढेर पर
वे दे रहे हैं वक्तव्य
सहिष्णुता और आस्था का
तर्कहीन कुकृत्य
उन्हें भयभीत नहीं करते
नहीं जगाती सपनों में
दर्दनाक चीखें
इतने रक्तपात
इतनी आगजनी के बाद भी।
(वही, पृष्ठ–59)

ऐसी ही तस्वीर को बयां करती है उनकी 'दंगों के बाद' कविता। जहाँ मनुष्य–मनुष्य को नहीं पहचानता है। वह विध्वंस की आग में स्वयं जल रहा है और दूसरे मनुष्यों को भी जला रहा है, जहाँ कानून अर्थहीन हो जाता है। कवि की कविता में इस रूप के भयातुर रूप को अनुभव किया जा सकता है, देखें–

गर्म सलाखों से बिंधे
धुआँ–धुआँ जलते शहर में
बीचो–बीच खड़ा आदमी
संविधान की धाराओं सा
संदर्भ हीन हो गया है
लगता है– अँधेरे और उजाले की
संधि–रेखा
वृत्ताकार बनकर
आदिम गुफा में परिवर्तित हो गयी है।
(वही, पृष्ठ–67)

उनकी (दलितों) की आवाज को सुनन वाला अतीत में कोई नहीं था। ऐसे विविध काले पृष्ठ रंगे पड़े हैं। आज भी गरीब दलित के साथ हो रहे अन्याय को प्रमुखता नहीं दी जाती है। उसे आज भी मार–पीट करके

भगाने की कोशिश की जाती है। उसकी आवाज दबाने का भरकस प्रयास किया जाता है। मीडिया भी उनकी आवाज को प्रमुखता नहीं देता है। 'पोस्टर' कविता में कवि कहता है–

मैं चीखना चाहा
ऊँची आवाज में
किन्तु मेरे शब्द घुटकर रह गए
उनके शोर में
मैं दीवार पर चिपका देख रहा था
भीड़ को जुलूस में बदलते।
(वही, पृष्ठ–68–69)

वह दलित के जीवन स्तर को गहराई से अनुभव किया है स्वयं भी उससे गुजरे हैं। जो रचनाकार स्वयं ऐसे जीवन से गुजरा हो, उस जीवन को भोगा हो, वह यदि लेखन में चित्रित करेगा, तो वास्तविकता के साथ करेगा। उनकी सर्वाधिक चर्चित कविता 'बस्स! बहुत हो चुका' में दलित जीवन का चित्रण यथार्थ शैली में देखिए–

जब भी देखता हूँ मैं
झाड़ या गंदगी से भरी बाल्टी–कनस्तर
किसी हाथ में
मेरी रंगों में
दहकने लगते हैं
यातनाओं के कई हजार वर्ष एक साथ
जो फैले हैं इस धरती पर
ठण्डे रेत कणों की तरह।
(वही, पृष्ठ–79)

उनकी अभिव्यक्ति पुरुष समाज तक नहीं सीमित है वह कामगार स्त्री का चित्रण भी करते हैं। जो प्रतिदिन सुबह–शाम अपना झाड़ू गलियों को साफ करने के लिए निकल पड़ती है। मेरे सामने भी दो सफाई करने (झाड़ू लगाने) वाली स्त्रियों के चित्र उभरकर सामने आ जाते हैं। जब मैं पट्टी, प्रतापगढ़ में नौकरी करता था। वह हमार मोहल्ले की गली में झाड़ू लगाती थीं– उनका नाम शकीना है। दुबली–पतली साँवले रंग की हाथ में झाड़ू लिए रहती। मैं उन्हें आँटी कहकर बुलाता था। एक दिन वह हाथ से कूड़ा उठाकर ट्राली में डाल रही थी, सुबह का समय था। मैं सुबह टहलने के लिए निकला था। मैं उन्हें हाथ से न डालने का अनुरोध किया। उनसे कहा– ''नगर

पालिका अधिकारियों से कहो। कूड़ा उठाने वाली वस्तुएँ दें।'' अरे, बेटवा सुनते कहाँ? उन्होंने तपाक से उत्तर दिया। मैं उन्हें समझाया कि आवेदन पत्र में लिखकर दे दो। पढ़े कहाँ हैं? कोई बात नहीं। अपने बच्चों से लिखवा लो और अपना अँगूठा लगा देना। उन्होंने वैसा ही किया। दूसरे दिन उनको वे वस्तु मिल गयी थी। वह बहुत खुश हुई थीं।

वह मुझ हमेशा आशीष देती, मैं उनसे बाते करता। दूसरा चित्र भी स्त्री का वहीं का है। तीसरा वर्तमान में जहाँ आज कार्यरत हूँ। 'वे नहीं जानते' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित स्त्रियों का चित्र खींचते हैं, कवि लिखता है–

हाथ में लिए झाड़ू
और टूटा–फूटा कनस्तर
सुबह मुँह अँधेरे
घर से निकलती माँ को देखकर
कभी नहीं रोया बच्चा
डरा नहीं अकेले घर में
अँधेरे कोने से
या गली में गुर्राते कुत्ते से।
(वही, पृष्ठ–81)

स्वयं पर गुजरे जीवन का 'लेखा–जोखा' कविता में प्रस्तुत करते हैं। कहते हैं कि भूख–प्यास, नींद कुछ भी नहीं देखती है। पेट में भूख लगी है। वह जठा नहीं देखता है, जमीन पर पड़ा हुआ नहीं देखता है और यदि प्यास लगी है तो वैसी स्थिति होती है, नींद आ रही है तो कहीं भी सो जाना मुमकीन है। ओमप्रकाश वाल्मीकि अपने भोगे हुए

जीवन को सत्यता के साथ लिखते हैं–
तपती दुपहर में
रजबहे की नालियों में
बहते गंगाजल से
बुझायी प्यास अनेक बार
बिना हिसाब किए
कितनी रेत समायी पेट में
कितना पानी बदला लहू में
फिर भी
न गंगा ही अपनी हो सकी
न रजबहे की रेत ही।
(अब और नहीं, पृष्ठ–09)

अपने घर का, आस–पास दलित बस्ती के परिवेश का जीवंत वर्णन करते हैं। 'जो मेरा नहीं हुआ' शीर्षक कविता में बरसात, धूप, गर्मी में, माँ चूल्हे का सीन बदलती रहती है। बरसात में जहाँ पानी टपकता वहाँ से हटाकर दूसरी जगह खाना बनाती। मैंने भी बचपन में अपनी माँ को ऐसा करते देखा है, पिता को बाल्टी में पानी उलीचते। कवि का यथार्थ दृश्य एवं अनुभव देखिए–

घर था
छत नहीं थी
खटिया थी
बिस्तर नहीं था
लीपा–पुता चूल्हा था
जो बदलता रहता था
अपनी जगह
मौसम के साथ
(वही, पृष्ठ–18)

अपने साथ होने वाली जातीय भेदभाव, ज्यादती का चित्रण करते हैं। 'काले दिनों' शीर्षक कविता में दर्द, टीस, वर्णन करते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं–

पसलियों में
एक–एक शब्द का
जिसे रचा है तुमने मेरे जिस्म पर काले दिनों में।
(वही, पृष्ठ–29)

अन्य कविताओं में भी 'स्वानुभूतिजन्य' स्थितियों का वर्णन किया है। इन 'कोलाहल', 'लावा', 'विरासत' आदि है। 'लावा' शीर्षक कविता में कवि की 'बेचैनी' आत्माभिव्यक्ति बनकर निकली है। वह कहते हैं–

भीतर एक बेचैनी है
धूप–सी दहकती हुई
जिसे मैं दुःख कहना भी चाहूँ
तो भी कह नहीं पाता हूँ।
(वही, पृष्ठ–70)

निष्कर्षतः ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'स्वानुभूति' स्वयं की 'स्वानुभूति' होते हुए ऐसा लगता है कि वह समस्त दलित–समाज की पीड़ा की अभिव्यक्ति है उन्होंने अपनी कविता में जिए हुए, भोगे हुए यथार्थ रूप में कवि ने पिरोया है। कभी उनकी अनुभूति पूर्वजों एवं स्वयं हुए अत्याचार अन्याय, शोषण से कराह उठती है। कभी वह स्त्रियों की पीड़ा को अपनी माँ की पीड़ा से समतुल्य करते हैं इसीलिए उनकी कविता 'स्वानुभूति की पीड़ा' का उत्स है।

दलित काव्य 'अनुभव' की गतिकीय से निकला हुआ प्रामाणिक लेखन है, यह लेखन काल्पनिक लेखन नहीं है। यहाँ कल्पना का कोई स्थान नहीं है। दलित कवि अपने लेखन में प्रतिकार नकार, तेवर, प्रतिशोध, प्रहार अव्यवस्था, जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था इत्यादि का विरोध करते हैं। वह सामंतवादी मूल्यों, मान्यताओं, ब्राह्मणवादी व्यवस्था, छुआछूत इत्यादि का प्रतिकार करना कविता का एक तरह से लक्ष्य है। दलित कवि या लेखक कतई मानवता का विरोध नहीं करता है वह अपने रचना संसार में समता–समानता, मानवता, बन्धुता का पक्षधर है। ओमप्रकाश वाल्मीकि संवेदनशील कवि है। उनकी कविताओं मनुष्य समाज को बेहतर बनाने की संकल्पना प्रस्तुत की है, हताशा, निराशा, यातना, उपेक्षा, शोषण, अन्याय, पीड़ा, दर्द, उपहास इत्यादि को झेलते हुए भी वह निराशा नहीं दिखाई पड़ते है। 'तनी मुट्ठियाँ' शीर्षक कविता में संघर्ष से जूझ रही उनकी पूर्व पीढ़ी जिनके आँखों में आँसू हैं लेकिन फिर भी उन्हें विश्वास है कि एक दिन ये संगठित होंगे, मिलकर संघर्ष करेंगे, इतिहास बदल देंगे और नया इतिहास बनाएगी। कवि का कथन है–

मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर
खोद लिया है संघर्ष
जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं
विद्रोह की चिंगारी फूटेगी
जलती झोंपड़ी से उठते धुएँ में
तनी मुट्ठियाँ
तुम्हारे तहखानों में
नया इतिहास रचेंगी।
(सदियों का संताप, पृष्ठ–30)